# इकाई 9 : पश्चिमी सामाजिक विचारक

इस इकाई में हम समाजशास्त्र के पश्चिमी विचारकों के बारे में अध्ययन करेंगे जिन्होंने यूरोप में समाजशास्त्र को न केवल एक विषय के रूप में स्थापित किया वरन् उसे नई दिशा भी दी।

## अगस्त कॉम्ट (1798–1857) (अगस्त मैरी फ्रेकाइज जेवियर कॉम्ट)

**परिचय :**

अगस्त कॉम्ट को समाजशास्त्र का जनक कहा जाता है। इनका जन्म फ्रांस के नगर मॉण्टपेलियर में 19 जनवरी 1798 में हुआ था। आपके जन्म से पहले फ्रांस में क्रान्ति हो चुकी थी और इस क्रान्ति के कारण न केवल फ्रांस बल्कि सम्पूर्ण यूरोप में बौद्धिक आन्दोलनों के माध्यम से स्वतंत्रता, समानता तथा अधिकारों के प्रति वहाँ की जनता में जागरूकता बढ़ने लगी थी। उस समय यूरोप में औद्योगिक क्रांति का जन्म भी हुआ। बौद्धिक एवं औद्योगिक क्रांति से यूरोपीय समाज में तीव्र सामाजिक परिवर्तन को जन्म दिया। परिवर्तन के इस युग में न केवल प्राकृतिक विज्ञानों का विकास हुआ वरन् सामाजिक विज्ञानों का भी विकास होने लगा। इन सामाजिक विज्ञानों ने मानव के सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों का पृथक और स्वतंत्र अध्ययन प्रारम्भ किया। इन्हीं सामाजिक विज्ञानों के विकास में समाजशास्त्र को जन्म देने का श्रेय 1838 में अगस्त कॉम्ट को जाता है।

अगस्त कॉम्ट ने मानव समाज को समझने के लिए ही समाजशास्त्र की स्थापना की। इसीलिए इन्हें "समाजशास्त्र का जनक" (Father of Sociology) कहा जाता है। कॉम्ट समाजशास्त्र को वास्तविक विज्ञान (Naturalistic Sceince) बनाना चाहते थे जो मानव जाति के भूतकालीन विकास तथा भविष्य के बारे में बता सके। आपने पहले अपने इस विज्ञान को 'सामाजिक भौतिकी'* (Social Physics) कहा लेकिन बाद में इसे परिवर्तित कर 'समाजशास्त्र' (Sociology) कर दिया। समाजशास्त्र जिसे अंग्रेजी में (Sociology) कहा जाता है, दो भिन्न भाषाओं के शब्द से मिलकर बना है जिसमें पहला शब्द 'सोशियस'* (Socius) जो लैटिन तथा दूसरा शब्द 'लोगिया' (Logia) ग्रीक भाषा से है। सोशियस का अर्थ होता है समाज तथा लोगिया का अर्थ शास्त्र या विज्ञान होता है अर्थात् शाब्दिक रूप में समाजशास्त्र का अर्थ है समाज का विज्ञान या शास्त्र होता है।

**कॉम्ट की प्रमुख रचनाएँ–**

1. ए प्रास्पेक्ट्स ऑफ दी साइण्टिफिक वर्क रिक्वायर्ड फॉर दि ऑर्गेनाइजेशन ऑफ सोसायटी
2. पॉजिटिव फिलासफी (1832–42)
3. सिस्टम ऑफ पाजिटिव पालिटी (1912)
4. डिस्कर्स ऑन द पॉजिटिव स्पिरिट (1844)
5. रिलीजन ऑफ ह्यूमनिटी (1856)

**समाजशास्त्र के क्षेत्र में कॉम्ट का योगदान–**

1. चिन्तन की तीन अवस्थाओं का नियम।
2. सामाजिक विज्ञानों का वर्गीकरण और उनका संस्तरण।
3. समाजशास्त्र एक नवीन विषय
4. सामाजिक स्थिति विज्ञान तथा सामाजिक गति विज्ञान।
5. मानवता धर्म।
6. प्रत्यक्षवाद।

## चिन्तन की तीन अवस्थाओं का नियम

प्रत्यक्षवाद को समझने से पहले यह जानना आवश्यक है कि उसमें पूर्व समाज की मानसिक स्थिति कैसी थी क्योंकि कोई भी आविष्कार एवं खोज अचानक नहीं होती है उसका एक चरण होता है। इस चरण के अन्तर्गत ही चिन्तन की अवस्थाओं का नियम है।

सामाजिक चिन्तन एवं नए सामाजिक विज्ञान की रचना के क्षेत्र में कॉम्ट द्वारा प्रतिपादित चिन्तन के तीन अवस्थाओं का नियम उनकी एक महत्वपूर्ण देन है। सन् 1822 में कॉम्ट ने मानव के बौद्धिक विकास को तीन स्तरों के नियम द्वारा प्रकट किया। उनके अनुसार प्रत्येक विचारधारा एवं हमारे ज्ञान की प्रत्येक शाखा एक के बाद एक विभिन्न सैद्धान्तिक अवस्थाओं से होकर गुजरती है–

1. धर्मशास्त्रीय अवस्था।
2. तात्त्विक अवस्था।
3. वैज्ञानिक या प्रत्यक्षवादी अवस्था।

### 1. धर्मशास्त्रीय अवस्था

इस अवस्था में समाज की सभी घटनाओं के धार्मिक आधार पर व्याख्या की जाती है। मनुष्य प्रत्येक घटना के पीछे अलौकिक सत्ता में विश्वास करता है। कॉम्ट ने धार्मिक स्तर के तीन उपस्तर बनाये है।

#### 1.1. प्रेतवाद

धर्मशास्त्रीय चिन्तनक्रम के अन्तर्गत सबसे प्रारम्भिक अवस्था को प्रेतवाद कहा जाता है। प्रेतवाद की अवस्था में ऐसा स्वीकार किया जाता है कि प्रत्येक जड़ एवं चेतन वस्तु में एक जीव होता है तथा सभी अलौकिक शक्तियाँ इनको परिचालित करती है।

### 1.2. बहुदेववाद

मानव के बौद्धिक विकास के फलस्वरूप चिन्तन के रूप में भी परिवर्तन हुआ। प्रेतवाद की बाद की अवस्था बहुदेववाद कहलाती है। इस अवस्था में आदिम मानव में शक्तियों को वर्गीकृत कर लिया और विभिन्न देवताओं की स्थापना भी कर ली थी। इन देवताओं के अपने–अपने अलग विभाग थे। इस अवस्था में स्थिति पहले से कुछ अधिक व्यवस्थित एवं सुनिश्चित थी।

### 1.3. एकेश्वरवाद

धर्मशास्त्रीय चिन्तन अवस्था का अंतिम चरण एकेश्वरवाद है। जैसा इसके नाम से ही स्पष्ट है इस अवस्था में केवल एक ईश्वर की परम सत्ता में विश्वास रखा जाता था। एकेश्वरवाद मानव के बौद्धिक विकास का परिणाम है। एकेश्वरवाद का आविष्कार पूर्व की अव्यवस्थित एवं अबौद्धिक धारणाओं को समाप्त करने के लिए हुआ था। इस अवस्था में यह माना जाता है पूरे विश्व का परिपालन केवल एक ही ईश्वर करता है, और इस ईश्वर की परम सत्ता एवं परम शक्ति हैं।

### 2. तात्त्विक अवस्था

चिन्तन के विकासक्रम के अन्तर्गत कॉम्ट के अनुसार दूसरी अवस्था तात्त्विक या अमूर्त अवस्था है। चिन्तन एवं बौद्धिकता के विकास के फलस्वरूप मानव की समस्याएं बढ़ गई। धर्मशास्त्रीय चिन्तन उन समस्याओं के समाधान के लिए पर्याप्त नहीं था। संसार में विरोधी प्रवृतियों के साथ दर्शन होने की अवस्था में एकेश्वरवाद मानव को संतुष्ट नहीं कर सकता था। इसीलिए तात्त्विक या अमूर्त या तत्वदार्शनिक चिन्तन को अपनाया। इस दर्शन के अन्तर्गत अमूर्त अलौकिक सत्ता को स्वीकार किया जाता है। इसके अन्तर्गत यह माना जाता है कि संसार की सभी घटनाएँ अमूर्त एवं अवैयक्तिक सत्ता द्वारा परिचालित होती है। चिन्तन की इस अवस्था में यह नहीं माना जाता है कि प्रत्येक जीव एवं वस्तु के पीछे एक मूर्त ईश्वर है।

### 3. वैज्ञानिक या प्रत्यक्षवादी अवस्था–

धर्मशास्त्रीय एवं तात्विक चिन्तन अवस्था के बाद वैज्ञानिक अथवा प्रत्यक्षवादी अवस्था आती है। धर्मशास्त्रीय एवं तात्विक दर्शन के अन्तर्गत जो भी ज्ञान प्राप्त किया जाता है वह अनुमान तथा कल्पना पर ही आधारित होता है। उपर्युक्त दोनों चिन्तन में निश्चितता के अभाव को समाप्त करने के लिए वैज्ञानिक चिन्तन अपनाया जाता है। वैज्ञानिक चिन्तन तथ्यों एवं प्रमाणों पर आधारित होता है। इसमें कल्पना का महत्व नहीं होता है। वैज्ञानिक चिन्तन तथ्यों के अवलोकन द्वारा प्रारम्भ होता है। तथ्यों के अवलोकन के बाद उनका वर्गीकरण तथा सामान्यीकरण किया जाता है। प्राप्त परिणामों का तरह–तरह से परीक्षण किया जाता है पर्याप्त परीक्षण के बाद नियम बनाये जाते हैं। यह नियम वैज्ञानिक नियम कहलाते हैं।

कॉम्ट का मत है कि मानव चिन्तन की प्रत्येक शाखा को वैज्ञानिक अवस्था तक पहुँचने के लिए पूर्व की दोनों अवस्थाओं में से होकर गुजरना पड़ता है यही नहीं प्रायः यह भी देखा जाता है कि वैज्ञानिक अवस्था के चिन्तन में पूर्व की अवस्थाओं के कुछ न कुछ स्पष्ट अथवा अस्पष्ट लक्षण अवश्य विद्यमान रहा करते हैं।

## प्रत्यक्षवाद

कॉम्ट ने सेंट साइमन के विचारों से प्रभावित होकर प्रत्यक्षवाद को जन्म दिया। प्रत्यक्षवाद को विज्ञानवाद से भी जाना जाता है। प्रत्यक्षवाद के अनुसार ज्ञान का विकास निश्चित अवस्था में हुआ। कॉम्ट समाजशास्त्र को एक विज्ञान के रूप में स्थापित करना चाहते थे। इसीलिए उन्होंने समाजशास्त्र में वैज्ञानिक विधि के प्रयोग पर बल दिया। उनके अनुसार समाजशास्त्र को यदि विज्ञान की श्रेणी में आना है तो समाजशास्त्रियों को निम्न चार तरीकों से समाज की घटनाओं का अध्ययन करना चाहिए।

1. अवलोकन पद्धति
2. परीक्षण पद्धति
3. तुलनात्मक पद्धति
4. ऐतिहासिक पद्धति

### 1. अवलोकन पद्धति–

कॉम्ट के अनुसार समाजशास्त्र को विज्ञान बनाना है तो इसमें अवलोकन पद्धति पर बल दिया जाना चाहिए। अवलोकन मानव इन्द्रियों द्वारा किया गया क्रमबद्ध व व्यवस्थित अध्ययन है। अर्थात् किसी भी घटना का मानव इन्द्रियों (आँख, कान, नाक व स्पर्श) द्वारा क्रमबद्ध व व्यवस्थित तरीके से अध्ययन किया जाता है तो वह शास्त्र विज्ञान की श्रेणी में आता है।

### 2. परीक्षण पद्धति–

कॉम्ट के अनुसार समाजशास्त्र में घटनाओं तथा प्रघटनाओं का बार–बार परीक्षण होना चाहिए हालांकि उनका यह भी मानना था कि सामाजिक विज्ञानों में परीक्षण नहीं हो सकता है लेकिन समाजशास्त्र को विज्ञान की श्रेणी में आना है तो घटनाओं का आंशिक परीक्षण होना आवश्यक है।

### 3. तुलनात्मक पद्धति–

कॉम्ट के अनुसार सामाजिक विज्ञानों में सामाजिक प्रघटनाओं का तुलनात्मक अध्ययन होना आवश्यक है। क्योंकि हर तरह की घटना के कार्य कारण अलग–अलग होते हैं। इसलिए उन घटनाओं का तुलनात्मक विवेचन आवश्यक है।

### 4. ऐतिहासिक पद्धति–

कॉम्ट का मानना था कि ऐतिहासिक पद्धति का प्रयोग वैज्ञानिक नहीं है लेकिन समाजशास्त्र में मानव समाज का अध्ययन है। अतः समाज का सामाजिक घटनाओं को समझने के लिए ऐतिहासिक पद्धति का प्रयोग किया जाता है।

ऐतिहासिक पद्धति के अन्तर्गत हम समाज को विभिन्न कालों में विभाजित कर समाज को समझ सकते हैं।

उपर्युक्त आधारों पर यह कहा जा सकता है कि कॉम्ट ने समाजशास्त्र को एक विज्ञान के रूप में स्थापित करने का प्रयास किया उन्होंने समाजशास्त्र को निश्चित विषयवस्तु नहीं दी। लेकिन उन्होंने समाजशास्त्र को प्रत्यक्षवादी विज्ञान बनाने के लिए अध्ययन पद्धति और ज्ञान के विकास की जो व्यवस्था की है वह समाजशास्त्र के लिए महत्वपूर्ण है।

इस अध्याय में हमने यह देखा है कि अगस्ट कॉम्ट ने समाजशास्त्र की स्थापना करते हुए यह स्थापित करने का प्रयास किया है कि समाजशास्त्र किसी भी ज्ञान का उद्‌भव मानव चिन्तन की अवस्थाओं से होते हुए प्रत्यक्षवाद या वैज्ञानिकवाद की तरह होता है। प्रत्यक्षवाद 'क्या है' का अध्ययन है अर्थात् जो घटना जिस रूप में घट रही है उसे उसी रूप में प्रस्तुत करना ही प्रत्यक्षवाद है। न कि 'क्या होगा' या 'क्या होना चाहिए' का अध्ययन। इस रूप में अगस्त कॉम्ट ने समाजशास्त्र को विज्ञान की श्रेणी में रखने का प्रयास किया।

## कार्ल मार्क्स (1818–1883)

### परिचय–

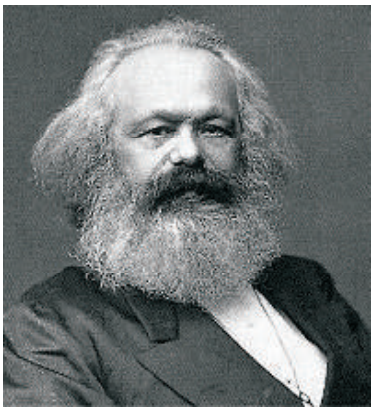

कार्ल मार्क्स का जन्म पश्चिमी जर्मनी के एक यहूदी परिवार में 5 मई 1818 को हुआ था। 1824 में उनके पूरे परिवार ने यहूदी धर्म त्यागकर ईसाई धर्म ग्रहण कर लिया था। 1835 में मार्क्स को बॉन विश्वविद्यालय में उच्च शिक्षा के लिए भेजा गया। माता–पिता की इच्छा थी कि पुत्र को एक अच्छा वकील बनाये। मार्क्स बॉन विश्वविद्यालय से बर्लिन विश्वविद्यालय गये जहाँ उनको दर्शन में विशेष रुचि हुई और उन्होंने हींगल के दर्शन को पढ़ना प्रारम्भ किया। सन् 1841 में मार्क्स ने जेना विश्वविद्यालय से डाक्ट्रेट की उपाधि प्राप्त की। उनका शोध विषय था ऐपीक्यूरस तथा डैमोक्राईटस के भौतिकवाद का आलोचनात्मक विवेचन। डाक्ट्रेट की उपाधि प्राप्त करके उन्होंने अध्यापक के रूप में पद प्राप्त करने का प्रयास किया किन्तु बर्लिन के कुछ क्रांतिकारियों के साथ सम्पर्क में आ जाने के कारण इनकी विचारधारा को शिक्षा अधिकारियों ने पसंद नहीं किया। अतः इनको अध्यापन का कार्य नहीं मिल सका। 1843 में वह जर्मनी को त्याग कर फ्रांस पहुँचे वहां 1844 में मार्क्स की भेंट फेडरिक एन्जिल्स से हुई, दोनों को सांझे रूप से कम्युनिस्ट सिद्धान्त के प्रतिपादक के रूप में जाना जाता है। सन् 1845 में मार्क्स फ्रांस छोड़कर इंग्लैण्ड चले गये। 1883 में लन्दन में उन्होंने अपनी जीवन यात्रा समाप्त की। अपनी इन विपरीत परिस्थितियों के बावजूद भी मार्क्स ने ऐसी दार्शनिक खोज प्रस्तुत की जिसके कारण आज उनका नाम संसार में उच्चतम विचारकों में लिया जाता है।

### कार्ल मार्क्स की कृतियाँ–

1. क्रिटीसिज्म ऑफ हेगेलियन फिलासफी ऑफ राईट।
2. ऑन द ज्यूइश क्वेरयन
3. इॅकानोमिक एण्ड फिलासाफिकल मेनूस्क्रिप्ट 1844
4. द होली फैमिली
5. द पावर्टी ऑफ फिलासॉफी 1847
6. मेनीफेस्टो ऑफ द कम्यूनिस्ट पार्टी 1847
7. ए कन्ट्रीब्यूशन द क्रिटिक ऑफ पॉलिटिकल इकोनोमी 1859
8. द जर्मन आईडियोलोजी 1845–46
9. द गोया प्रोग्राम
10. सिविल वार इन फ्रांस
11. क्लास स्ट्रगल इन फ्रांस 1850
12. रिवाल्यूशन एण्ड काउण्टर रिवाल्यूशन
13. दास कैपिटल 1867

### कार्ल मार्क्स का समाजशास्त्र में योगदान–

1. द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद
2. इतिहास की आर्थिक व्याख्या
3. वर्ग संघर्ष
4. अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त
5. पूंजीवादी व्याख्या का विश्लेषण और भविष्य के सम्बन्ध में विचार
6. राज्य और शासन सम्बन्धी धारणा
7. प्रजातंत्र, धर्म और राष्ट्र के सम्बन्ध में धारणा
8. साम्यवाद
9. परिवर्तन का सिद्धान्त
10. अलगाव का सिद्धान्त

### वर्ग संघर्ष–

मार्क्स का वर्ग संघर्ष का सिद्धान्त उनके गहन अध्ययन तथा अनवरत श्रम का परिणाम था। मार्क्स ने अपने समाजवाद में अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र और समाजशास्त्र पर जो कुछ लिखा है उनका सम्पूर्ण सन्दर्भ वर्ग व्यवस्था के विश्लेषण पर आधारित है। उन्होंने अपनी पुस्तक "दास कैपिटल" की शुरूआत ही इस कथन से की, अभी तक अस्तित्व में रहे समाजों का इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास रहा है अर्थात् मानव के अस्तित्व के बाद जितने भी समाज रहे हैं उन सभी समाजों में वर्ग रहे और उन वर्गों में संघर्ष भी रहा है। यह वर्ग मालिक–गुलाम, राजा–प्रजा, जमींदार–कृषक, पूंजीपति–श्रमिक के रूप में रहे हैं।

रेमण्ड ऍरा ने मार्क्स की विचारधारा पर अपनी पुस्तक मेनकरेन्ट्स इन सोशियोलोजिकल थॉट में लिखा है कि मार्क्स का समाजशास्त्र वास्तव में वर्ग संघर्ष का समाजशास्त्र है। उनकी इतिहास की अवधारणा में वर्ग संघर्ष का प्रस्ताव केन्द्रीय प्रस्ताव है। ऍरा ने मार्क्स की वर्ग की अवधारणा के तीन मुख्य प्रस्ताव रखे हैं।

1. वर्गों का अस्तित्व उत्पादन पद्धतियों के विकास के साथ इतिहास की विविध दशाओं के साथ जुड़ा है यानि वर्ग उत्पादन के विकास के साथ बनते हैं।
2. वर्ग संघर्ष अनिवार्य रूप से सर्वहारा को अधिनायकवाद की ओर ले जाता है।
3. यह अधिनायकवाद जो केवल संक्रमण काल होता है वर्गों का उन्मूलन करता है और वर्गहीन समाज की स्थापना की ओर ले जाता है।

**वर्ग व वर्ग चेतना–**

वर्ग शब्द अंग्रेजी के Class शब्द का हिन्दी रूपान्तरण है जो लैटिन भाषा के Classis शब्द से बना है। इसका अभिप्रायः व्यक्तियों की एक श्रेणी अथवा एक समान व्यक्तियों के समूह से है।

वर्ग को परिभाषित करते हुए लेनिन लिखते हैं 'वर्ग लोगों के ऐसे बड़े समूह को कहते हैं जो सामाजिक उत्पादन की इतिहास द्वारा निर्धारित किसी पद्धति में अपने–अपने स्थान की दृष्टि से उत्पादन के साधनों के साथ अपने सम्बन्ध की दृष्टि से श्रम के सामाजिक संगठन में अपनी भूमिका की दृष्टि से और फलस्वरूप सामजिक सम्पदा के जितने हिस्से के वे मालिक होते हैं उसके परिणाम तथा उसे प्राप्त करने के तौर तरीकों की दृष्टि से एक दूसरे से भिन्न होते हैं।

इस परिभाषा में लेनिन ने वर्ग की निम्नांकित विशेषताओं का उल्लेख किया है :

1. वर्ग लोगों के बहुत बड़े समूह को कहते हैं।
2. प्रत्येक वर्ग का सामाजिक उत्पादन के इतिहास द्वारा निर्धारित पद्धति में एक स्थान होता है।
3. सामाजिक समूह का उत्पादन के साधनों से सम्बन्ध होता है।
4. धर्म के सामाजिक संगठन में उनकी भूमिका होती है।
5. प्रत्येक वर्ग का सामाजिक सम्पदा प्राप्त करने का अपना तौर तरीका होता है।
6. मार्क्स कहते हैं कि इतिहास में अब तक जितनी भी सामाजिक व्यवस्थाएँ रही है उनमें सम्पत्ति का वितरण और समाज का वर्ग एवं श्रेणियों में विभाजन इस बात पर निर्भर रहा है समाज में क्या और कैसे उत्पादन हुआ तथा उपज का विनिमय कैसे हुआ ?

मार्क्स वर्गों का आधार सामाजिक या धार्मिक नहीं मानते, उनके अनुसार वर्गों का आधार आर्थिक ही रहा है। वे लिखते हैं, ''सामाजिक वर्ग ऐतिहासिक परिवर्तन की इकाइयाँ तथा आर्थिक व्यवस्था द्वारा समाज में निर्मित श्रेणियाँ दोनों ही हैं।'' मार्क्स के वर्ग सम्बन्धी विचारों से रेमण्ड ऍरा ने दो निष्कर्ष निकाले हैं–

1. एक सामाजिक वर्ग वह है जो उत्पादन की प्रक्रिया में एक निश्चित स्थान रखता है। उत्पादन प्रक्रिया में स्थान के दो अर्थ हैं एक उत्पादन की तकनीकी प्रक्रिया में स्थान दूसरा वैधानिक प्रक्रिया के स्थान जो कि तकनीकी प्रक्रिया पर थोपी हुई होती है। पूंजीपति जो कि उत्पादन साधनों का स्वामी होता है, श्रमिकों का संगठनकर्ता भी होता है वहीं तकनीकी प्रक्रिया का स्वामी भी होता है तथा अपनी वैधानिक स्थिति के कारण उत्पादकों से अतिरिक्त मूल्य भी प्राप्त करता है।
2. पूंजीवाद के विकास के साथ–साथ वर्ग सम्बन्ध भी सरल होते जाते हैं। वास्तव में जब आय के केवल दो स्त्रोत (श्रम एवं लाभ) होते हैं जो समाज में केवल दो ही बड़े वर्ग रह जाते हैं। श्रम शक्ति के मालिक श्रमिक वर्ग तथा पूंजीपति जो कि अतिरिक्त मूल्य को हड़पते हैं। औद्योगीकरण में भूमिकर पर आश्रित भूस्वामी वर्ग धीरे–धीरे समाप्त हो जाता है।

मार्क्स और एंजिल्स ने जर्मन आईडियोलोजी में वर्ग की व्याख्या की है। उनकी यह धारणा है कि पूंजीवादी समाज की बहुत बड़ी विशेषता वर्ग है। यहाँ मार्क्स ने वर्ग का विस्तृत विवरण दिया है। एक ही धन्धे को करने वाले लोग जिनकी आर्थिक अवस्था और काम की दशाएँ और इसी तरह शोषण के तरीके समान होते हैं वे ही वर्ग नहीं होते हैं वरन् वर्ग के लिए बहुत बड़ी अनिवार्यता वर्ग चेतना और वर्ग संगठन है। काम की दशाएँ कितनी हो अमानवीय हो मजदूर का जीवन कितना ही नारकीय हो लेकिन जब तक उसमें यह चेतना नहीं आती कि इस त्रासदी में वह अकेला ही नहीं है उसके गाँव और कस्बे के लोग ही नहीं है, प्रान्त और देश के अन्य कामगार ही नहीं वरन् सारी दुनिया के मजदूरों को चाहे वे किसी भी देश के हों, यही हालत है, तब तक वर्ग नहीं बनते। अतः वर्ग चेतना और वर्ग संगठन दो ऐसे आधार स्तम्भ है जिन पर वर्ग की संरचना खड़ी होती है।

वर्ग चेतना को और अधिक स्पष्ट करने के लिए मार्क्स व एंजिल्स ने दो महत्वपूर्ण अवधारणाएँ रखी है।

**1. क्लास इन इट सेल्फ–** अपने आप में वर्ग

जब किसी कार्य को करने वाले लोग संगठित हो जाते हैं और उनमें यह चेतना आ जाती है कि हम एक ही तरीके के कार्य या पेशे में हैं तो इस तरह के समूह अपने आप में वर्ग है। क्लास इन इट सेल्फ।

**2. क्लास फार इट सेल्फ–** अपने लिए वर्ग

जब किसी कार्य या व्यवसाय करने वाले अपने आप को उस वर्ग के लिए समर्पित करते हैं तथा वर्ग के लिए कुछ भी कर सकते हैं तो इसे अपने लिये वर्ग या क्लास फार इट

सेल्फ कहा जाता है।

मार्क्स क्लास इन इट सेल्फ से क्लास फार इट सेल्फ की प्रक्रिया को ही वर्ग चेतना कहते हैं।

**समाज में वर्गों का निर्माण–**

अति प्राचीन समय में कोई वर्ग व्यवस्था नहीं पाई जाती थी। सभी वस्तुएँ प्रकृति में सहज ही उपलब्ध थी जिनसे व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करता था। प्रकृति द्वारा प्रदत्त जीवित रहने के साधनों का वितरण समान था। अतः वर्गों का जन्म नहीं हुआ और शोषण की समस्या भी नहीं थी। मार्क्स के अनुसार समाज में सर्व प्रथम वर्ग प्राचीन साम्यवादी युग के अन्तिम चरण में विकसित हुए। आर्थिक दृष्टि से वर्गों का विकास अतिरिक्त उत्पादन तथा वितरण में असमानता के कारण हुआ। इससे निजी सम्पत्ति की अवधारणा ने जन्म लिया। मार्क्स ने विभिन्न समाजों में वर्ग व्यवस्था का उल्लेख निम्न रूप में किया–

1. **आदिम साम्यवादी समाज में वर्ग–**
   यह इतिहास का प्रथम युग कहा जाता है। इस युग में उत्पादन के साधनों पर सबका समान स्वामित्व होता था। सब लोग मिलकर उत्पादन कार्य करते थे तथा उसका वितरण भी समान होता था। समाज में श्रम विभाजन लिंग भेद के आधार पर पाया जाता था। इस प्रकार इस युग में वर्ग व्यवस्था नहीं पनपी।
2. **दासत्व युग में वर्ग–**
   जब समाज में दासत्व युग का प्रारम्भ हुआ तो उस समय वर्ग का निर्माण होने लगा। उस समय मनुष्य कृषि कार्य करता था। समाज में निजी सम्पत्ति के विचारों का उदय हुआ और धर्म विभाजन पनपने लगा। इस युग में बल या शक्ति के आधार पर उत्पादन के साधनों पर कुछ लोगों का आधिपत्य हो गया तथा कुछ ने दासत्व स्वीकार किया। अर्थात् मालिक व दास जैसे वर्गों का जन्म हुआ। इस युग में दास पूर्णतया मालिकों की मेहरबानी पर निर्भर रहते तथा उनको मालिकों की प्रताड़नाओं को भी झेलना पड़ता था।
3. **सामन्ती समाज में वर्ग–**
   इस युग में स्पष्ट रूप से दो वर्गों का अस्तित्व देखा जा सकता है। एक सामन्त दूसरा अर्द्धदास किसान। सामन्तों के पास उत्पादन के साधन और विशेषतः भूमि थी, यहीं लोग सत्ताधारी भी थे। अर्द्धदास किसान सामन्तों के अधीन थे और उनसे खेती का कार्य करवाया जाता था। हालांकि इनकी स्थिति पूर्ण रूप से दासों जैसी नहीं थी किन्तु इन पर अनेक प्रकार के प्रतिबन्ध थे। सामन्तों द्वारा किसानों का शोषण किया जाता था।
4. **पूंजीवादी समाज में वर्ग–**
   इस समाज की स्थापना मशीनों के आविष्कार तथा बड़े–बड़े उद्योग धंधों के कारण हुई। इस समाज में उत्पादन के साधनों पर पूंजीपतियों का अधिकार होता है तथा उत्पादन का कार्य श्रमिकों के द्वारा कराया जाता है। मार्क्स श्रमिक वर्ग को सर्वहारा वर्ग और पूंजीपति वर्ग को बर्जुआ वर्ग कहता है। सर्वहारा वर्ग के पास उत्पादन के साधनों का स्वामित्व नहीं होता है वरन् वे उत्पादन के साधन होते हैं जबकि पूँजीपति के पास उत्पादन के साधनों का स्वामित्व होता है और वे अधिक लाभ कमाने के लिए सर्वहारा वर्ग का शोषण करते हैं। इस प्रकार मार्क्स कहते हैं कि मानव समाज में हमेशा से ही दो वर्ग रहे हैं इन वर्गों का निर्माण उत्पादन के साधनों के स्वामित्व के आधार पर होता है। जिनके पास उत्पादन के साधनों का स्वामित्व होता है वे अपने लाभ को अधिक करने के लिए दूसरे वर्ग का शारीरिक व आर्थिक शोषण करता है।

**वर्ग संघर्ष–**

वर्ग संघर्ष की अवधारणा मार्क्स के महत्वपूर्ण विचारों में से एक है। मार्क्स ने वर्ग संघर्ष की अवधारणा ऑगस्टिन थोरे से ली थी किन्तु इसकी पूर्ण विवेचना मार्क्स ने ही की। मार्क्स यह मानते हैं कि इतिहास के प्रत्येक युग और प्रत्येक समाज में सदैव ही दो विरोधी वर्ग रहे हैं। शोषक और शोषित वर्ग और यह दोनों वर्ग परस्पर संघर्षरत रहे हैं। इनमें संघर्ष से ही समाज के विकास की प्रक्रिया आगे बढ़ती रही है और समाज का एक युग या अवस्था समाप्त होकर उनका स्थान दूसरा युग या अवस्था लेती रही है अर्थात् समाज में विभिन्न वर्ग होते हैं और उनके अपने–अपने हित होते हैं जिन्हें लेकर उनमें विरोध और संघर्ष पाया जाता है। दोनों वर्गों के मध्य संघर्ष होता है उसका मुख्य कारण उत्पादन के साधनों का स्वामित्व है दोनों ही वर्ग उत्पादन के साधनों पर अपना अधिकार जमाते हुए संघर्ष करते हैं।

मार्क्स का मानना है कि वर्गों के निर्माण से ही संघर्ष प्रारम्भ नहीं होता है वरन् उसका एक चरण होता है अर्थात् सर्वप्रथम समाज में वर्ग अस्तित्व में आते हैं उसके उपरान्त वर्ग चेतना आती है उसका मुख्य कारण शोषण होता है। जब यह शोषण असहनीय हो जाता है तो वर्ग चेतना में भी तीव्रता से वृद्धि होती है और वर्ग में वर्ग चेतना की भावना के विकास के साथ ही संघर्ष प्रारम्भ होता है। यह संघर्ष अपने–अपने हितों में रखकर किया जाता है। संघर्ष भी पहले वार्तालाप विरोध का रूप लेते हुए अन्त में खूनी संघर्ष में बदलता है तथा उस खूनी संघर्ष के बाद में ही समाज में नई अवस्था आती है। पुनः नये वर्गों का निर्माण होता है फिर संघर्ष होता है। यह प्रक्रिया मार्क्स के अनुसार अनवरत चलती रहती है। मार्क्स के अनुसार पूंजीवादी व्यवस्था के बाद आधुनिक साम्यवादी युग आयेगा जिसमें समाज में न कोई वर्ग होता है न ही मानव से किसी प्रकार का भेदभाव। आधुनिक साम्यवाद में उत्पादन के साधनों के उत्पादन पर

सभी का बराबर आधिपत्य होगा। इसीलिए उन्होंने लिखा है कि ''दुनिया के मजदूरों एक हो जाओ तुम्हारे पास बेड़ियों को खोने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।''

कार्ल मार्क्स ने यह स्थापित करने का प्रयास किया कि वर्ग संघर्ष के माध्यम से समाज में वर्गहीन और राज्य विहीन समाज की स्थापना होगी। हालांकि मार्क्स का यह मात्र एक काल्पनिक सपना ही था क्योंकि समाज का इतिहास हमें यह बताता है कि कभी भी समाज राज्य विहीन व वर्ग विहीन नहीं रहा है। चूँकि मार्क्स का जीवन पूर्णतया संघर्षमय रहा था इसीलिए उन्होंने समाज में संघर्षवादी दृष्टिकोण को स्थापित करने का प्रयास किया।

## इमाईल दुर्खीम
## 1858–1917

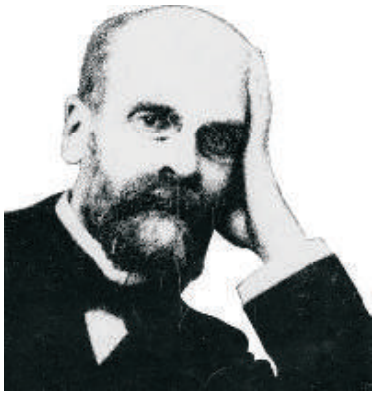

परिचय–

अब इमाईल दुर्खीम के बारे में जानेंगे। इस महान विचारक, दार्शनिक शिक्षा शास्त्री एवं समाजशास्त्री का जन्म 14 अप्रेल 1858 में फ्रांस के नगर एपीनाल में हुआ था। ये यहूदी थे। बचपन से दुर्खीम एक मेधावी प्रतिभा सम्पन्न एवं होनहार विद्यार्थी थे। प्रतिभा तो इन्हें विरासत में मिली थी क्योंकि इनके पूर्वज भी रेबीशास्त्रकार के रूप में विख्यात थे। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा एपीनाल के एक स्थानीय महाविद्यालय में हुई। स्नातक की उपाधि प्राप्त के पश्चात् आगामी अध्ययन के लिए आप पेरिस चले गये। उन दिनों पेरिस की इकोल अकादमी में प्रवेश पाना कोई सरल कार्य नहीं था। यहाँ पर इनको तीसरे प्रयास में सफलता मिली। इन्होंने यहाँ पर 1885 तक अध्ययन किया। इसके बाद दुर्खीम विशेष अध्ययन के लिए जर्मनी गए। वहाँ दुर्खीम अगस्त कॉम्ट व विल्हेमवुन्ट के लेखों से बहुत प्रभावित हुए।

जर्मन से लौटकर पुनः यह पेरिस आ गए तथा पुनः अध्ययन में लीन हो गए। सन् 1893 में श्रम विभाजन नामक विषय पर पेरिस विश्वविद्यालय से दुर्खीम ने डाक्ट्रेट की उपाधि प्राप्त की। आपने अपने जीवन काल में कई पुस्तकों का लेखन किया तथा 16 नवम्बर 1917 को दुर्खीम ने इस संसार का त्याग कर दिया।

दुर्खीम की प्रमुख कृतियाँ–

1. डिविजन ऑफ लेबर इन सोसायटी 1893
2. द रूल्स ऑफ सोशियोलोजिकल मेथड्स 1895
3. द स्यूसाइड 1897
4. द एलीमेन्ट्री फार्मस ऑफ रिलिजियस लाईफ 1912
5. सोशियोलोजी ऑफ एज्युकेशन 1922
6. सोशियोलोजी ऑफ फिलोसफी 1924
7. मोरल एज्युकेशन 1925
8. द सोशियोलोजियम 1928
9. द इवोल्युशन ऑफ पेडोगोलोजी इन फ्रांस 1938
10. लेकस दि सोशियोलोजी 1950
11. मोन्टेस्क्यू एण्ड रूसो 1953
12. प्रेगमेटिजम एण्ड सोशियोलोजी 1955

इन कृतियाँ में कुछ तो उनके जीवन काल में तथा कुछ उनकी मृत्यु के पश्चात् उनकी पत्नी लुईसड्रेफू ने प्रकाशित करवाई।

दुर्खीम की प्रमुख अवधारणाएँ, सिद्धान्त एवं समाजशास्त्रीय योगदान–

1. पद्धतिशास्त्र
2. समाज में धर्म विभाजन का सिद्धान्त
3. सामाजिक विकास का सिद्धान्त
4. आत्महत्या का सिद्धान्त
5. धर्म का सिद्धान्त
6. ज्ञान का समाजशास्त्र
7. मूल्यों का सिद्धान्त
8. नैतिकता का सिद्धान्त
9. सामूहिक चेतना की अवधारणा
10. सामूहिक प्रतिनिधान की अवधारणा
11. सामाजिक तथ्य की अवधारणा
12. सामाजिक एकता की अवधारणा
13. आदर्शहीनता की अवधारणा
14. अपराध दण्ड एवं कानून की अवधारणा
15. प्रकार्यवाद की अवधारणा

श्रम विभाजन–

दुर्खीम पहले विचारक थे जिन्होंने श्रम विभाजन की अवधारणा को आर्थिक आधार पर समझाते हुए उसे सामाजिक आधार पर समझाने का प्रयास किया। उन्होंने अपनी पहली पुस्तक समाज में श्रम विभाजन जिसका प्रकाशन 1893 में हुआ था समाज में श्रम विभाजन के कार्य कारक प्रभाव के आधार पर प्रकाश डाला है। दुर्खीम की पुस्तक श्रम विभाजन की केन्द्रीय समस्या समाज की सुदृढ़ता है। व्यक्ति व समाज के बीच सम्बन्धों के आधार पर ही समाज में श्रम विभाजन होता है। इस पुस्तक को इस आधार पर तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं।

अ. श्रम विभाजन में प्रकार्य–

इसके अन्तर्गत दुर्खीम ने सामाजिक एकता के लिए श्रम विभाजन को आधार माना है तथा उसके वैज्ञानिक अध्ययन के लिए कानून के स्वरूप, एकता के स्वरूप, मानवीय सम्बन्धों के स्वरूप, अपराध, दण्ड, सामाजिक उद्विकास आदि अनेक समस्याओं और अवधारणाओं की व्याख्या की है।

एक प्रकार्यवादी समाजशास्त्री के रूप में दुर्खीम का

श्रम विभाजन से तात्पर्य है कि सामाजिक कार्यों का विभाजन अर्थात् समाज में भिन्न–भिन्न प्रकार के कार्य होते हैं उन कार्यों को भिन्न–भिन्न व्यक्तियों द्वारा ही श्रम विभाजन है। जैसे भारतीय वर्ण व्यवस्था जिसमें ब्राह्मणों द्वारा अध्ययन अध्यापन, क्षत्रियों द्वारा देश की आन्तरिक व बाहरी सुरक्षा, वैश्यों द्वारा व्यापार व वाणिज्य तथा शुद्रों द्वारा उपर्युक्त तीनों वर्णों के सेवा सम्बन्धी कार्य करना सामाजिक श्रम विभाजन का उत्तम उदाहरण है।

दुर्खीम के अनुसार श्रम विभाजन का प्रकार्य भी महत्वपूर्ण है। इन्होंने प्रकार्य की व्याख्या में प्रकार्य के दो अर्थ बताये–

1. प्रकार्य अर्ध गति व्यवस्था अर्थात् क्रिया से है।
2. क्रिया के द्वारा पूर्व होने वाली आवश्यकता से है। दुर्खीम ने प्रकार्य शब्द का उपयोग दूसरे अर्थ में किया है। श्रम विभाजन के प्रकार्य से उसका तात्पर्य है कि श्रम विभाजन की प्रक्रिया समाज जीवन के लिए कौनसी भौतिक आवश्यकता की पूर्ति करती है। प्रकार्य का अर्थ उसने परिणाम या प्रभाव से नहीं लिया वरन् भूमिका के अर्थ में लिया है। प्रकार्य के अभाव में किसी भी समाज व शरीर के विभिन्न अंगों की आवश्यकता की पूर्ति नहीं हो पाती है इस अर्थ में श्रम विभाजन का प्रकार्य भी समाज में नैतिक कार्यों को उत्पन्न करना है।

## सामाजिक एकता की अवधारणा–

सामाजिक एकता की अवधारणा समाजशास्त्रीय साहित्य में दुर्खीम का सराहनीय योगदान है। दुर्खीम के अनुसार किसी भी समाज का विकास उसकी एकता में निहित है। जब तक समाज के लोगों में एक दूसरे के प्रति लगाव नहीं होता है तब तक वे एक दूसरे के प्रति निकट आने की आवश्यकता महसूस नहीं करते किन्तु लगाव केवल समानता में ही नहीं होता है वरन् यह भिन्नता व असमानता में भी होता है जैसे भारत में जातीय, भाषायी, क्षेत्रीय, धार्मिक, सांस्कृतिक कई प्रकार की भिन्नताएँ होते हुए भी समानता यह है कि हम भारतीय समाज के अंग है। यह भिन्नता हमें साथ मिलकर कार्य करने के लिए बाध्य करती है। इस प्रकार दुर्खीम के अनुसार श्रम विभाजन में ही सामाजिक एकता छिपी हुई होती है।

सामाजिक एकता एक नैतिक घटना है। यह समाज के नैतिक आदर्शों में निहित है। यह कोई मूर्त ''दिखने वाली'' वस्तु नहीं है वरन् समाज के सदस्यों की मानसिक स्थिति में निवास करती है। यह सामूहिक चेतना की अभिव्यक्ति है। दुर्खीम का मानना है कि सामाजिक एकता की स्थिति एवं स्वरूप में जनसंख्या के आधार पर और श्रम विभाजन के स्वरूप के आधार पर परिवर्तन होते रहते हैं इसी आधार पर समाज में दो प्रकार की एकता के रूप में जन्म लेते हैं।

### 1. यान्त्रिक एकता

इस प्रकार की एकता सरल आदिम और प्राचीन समाजों में पायी जाती है। समूह के सदस्यों में पायी जाने वाली समानताएँ इस एकता का आधार है। इस प्रकार की एकता वाले समाजों में लोगों की परिस्थितियों एवं भूमिकाओं में विचारों, विश्वासों और जीवन शैलियों में मानसिकता, सामाजिक और नैतिकता में समानता पायी जाती है। इस प्रकार के समाजों का आकार बहुत छोटा होता है इसलिए लोगों की आवश्यकताएँ सीमित तथा समान होती है। उन पर परम्परा जनमत और धर्म का नियन्त्रण और दबाव होता है। इस प्रकार समाजों में व्यक्ति का व्यक्तित्व समूह के अस्तित्व में मिल जाता है। वह समूह के साथ यन्त्रवत् सोचता, कार्य करता एवं आज्ञाओं का पालन करता है। ऐसे समाजों में श्रम विभाजन व विरोधीकरण नगण्य होता है इसलिए इस प्रकार के समाजों को 'यान्त्रिक एकता' कहा गया हैं इस प्रकार के समाजों को 'समरूपता की एकता' वाले समाज भी कहा जाता है। ऐसे समाजों में दमनकारी कानून पाया जाता है अर्थात् आँख के बदले आँख या जान के बदले जान। ऐसे समाजों में अपराध को समाज के विरुद्ध माना जाता है इसीलिए दण्ड भी उसी अनुरूप पाया जाता है।

### सावयवी एकता–

दुर्खीम के अनुसार यान्त्रिक एकता के ठीक विपरीत वाली एकता को सावयवी एकता कहा जाता है। इस प्रकार की एकता आधुनिक जटिल, विकसित और औद्योगिक समाजों में पाई जाती है। समूह के सदस्यों में पायी जाने वाली विभिन्नताएँ इस एकता का आधार होती है। इसीलिए ऐसे समाजों को विभिन्नता की एकता वाले समाज भी कहा जाता है। इस प्रकार की एकता वाले समाजों में श्रम विभाजन व विशेषीकरण की प्रधानता होने के कारण भिन्नताएँ अधिक पायी जाती है। यह भिन्नताएँ समाज में व्यक्तिगत, स्वतंत्रता को बढ़ावा देती है तथा सामूहिक चेतना की भावना को कमजोर करती है। विभिन्नता युक्त आधुनिक समाजों में लोगों की आवश्यकताओं की अधिकता होती है इसीलिए वे उनकी पूर्ति हेतु दूसरे लोगों पर अधिक निर्भर रहते हैं। श्रम विभाजन व विशेषीकरण की अधिकता के कारण व्यक्ति कम प्रकार का ही कार्य करता है और वह उसी में विशेष होता है। समाज के सदस्यों की यह पारस्परिक निर्भरता और विशेषीकरण से उत्पन्न असमानता उन्हें एक दूसरे के निकट आने के लिए बाध्य करती है जिससे समाज में एक विशेष प्रकार की एकता स्थापित होती है। इसी प्रकार की एकता को दुर्खीम सावयवी एकता कहते हैं। इसी प्रकार की एकता शारीरिक एकता के समान होती है जैसे शरीर के विभिन्न अंग एक दूसरे से भिन्न होते हुए भी एक दूसरे पर निर्भर रहते हैं उसी प्रकार ऐसे समाज के भिन्न–भिन्न अंग भी एक दूसरे पर निर्भर रहते हैं ऐसे समाजों में प्रतिकारी कानून पाये जाते हैं जिनमें व्यक्ति को सुधारने का मौका दिया जाता है।

### ब. श्रम विभाजन के कारण–

अपनी पुस्तक के दूसरे खण्ड में दुर्खीम ने श्रम विभाजन के कारणों व दशाओं की व्याख्या की है। चूंकि श्रम विभाजन भी एक सामाजिक तथ्य है। अतः दुर्खीम ने इसमें कारकों की खोज भी सामाजिक जीवन की दशाओं एवं उनकी आवश्यकताओं में ही की है। दुर्खीम ने श्रम विभाजन के तीन प्रमुख कारण बताये हैं–

**1. जनसंख्या के आकार और घनत्व में वृद्धि**

दुर्खीम श्रम विभाजन का प्राथमिक कारण जनसंख्या का आकार व उसके घनत्व में वृद्धि को मानते हैं अर्थात् जैसे–जैसे समाज की जनसंख्या का आकार व घनत्व में वृद्धि होती है वैसे–वैसे श्रम विभाजन में भी वृद्धि होती है। प्राचीन समय में जनसंख्या का आकार व घनत्व कम था इसीलिए वहाँ श्रम विभाजन नगण्य सा था लेकिन जैसे–जैसे समाज की जनसंख्या का आकार व घनत्व में वृद्धि हुई वैसे–वैसे श्रम विभाजन व विशेषीकरण में भी वृद्धि हुई।

जनसंख्या वृद्धि के कारण खण्डात्मक समाज धीरे–धीरे समाप्त होने लगे और उनके स्थान पर निश्चित समाज जन्म लेने लगे जिसके कारण जनसंख्या का घनत्व भी बढ़ने लगा। दुर्खीम के अनुसार जनघनत्व भी दो प्रकार का होता है–

1. **भौतिक घनत्व–**
   इस प्रकार के जनघनत्व में व्यक्ति शारीरिक रूप से एक ही स्थान पर केन्द्रित होने लगते हैं। जैसे भारत के महानगर जहाँ पर कम स्थान पर अधिक लोग एक साथ निवास करते हैं।
2. **नैतिक घनत्व–**
   नैतिक घनत्व भौतिक घनत्व का ही परिणाम है। इसमें लोगों के सम्बन्धों में उनकी क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं में वृद्धि होती है। लोगों के अन्तः क्रियाओं में वृद्धि से जटिलता उत्पन्न होती है जिसे गतिशील या नैतिक घनत्व कहते हैं। चूंकि जनसंख्या व भौतिक घनत्व में वृद्धि के कारण परस्परिक जागरूकता भी बढ़ती है जो नैतिक घनत्व को भी बढ़ाती है। नैतिक घनत्व को बढ़ाने का मुख्य कारण यातायात व दूरसंचार के साधनों में वृद्धि होना है।
3. **पैतृकता का घटता प्रभाव–**
   दुर्खीम का मानना था कि पैतृकता का जितना प्रभाव होता है परिवर्तन के अवसर भी उतने ही कम होते हैं। पैतृकता के आधार पर जब समाज में व्यवसायी अथवा कार्यों का विभाजन किया जाता है तो श्रम विभाजन को विकसित होने में बाधा उत्पन्न होती है लेकिन जब पैतृकता क्षीण होती है तो श्रम विभाजन भी उतना ही अधिक होता है उदाहरण के लिए प्राचीन समय में भारत में व्यवसाय के आधार पर जातियों का निर्माण होता था। व्यक्ति वही व्यवसाय करता था जो उसके पूर्वज करते थे ऐसी स्थिति में श्रम विभाजन कम मात्रा में पाया जाता था। लेकिन आधुनिक भारत में पैतृक व्यवसाय करना आवश्यक नहीं है इसीलिए श्रम विभाजन भी अधिक मात्रा में पाया जाता है। उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि दुर्खीम ने श्रम विभाजन के समाजशास्त्रीय कारणों को स्थापित किया तथा बताया कि जनसंख्या वृद्धि उसका मुख्य कारण हैं।

## श्रम विभाजन के परिणाम–

दुर्खीम ने अपनी पुस्तक के तीसरे भाग में श्रम विभाजन के परिणामों पर चर्चा की। उनके अनुसार श्रम विभाजन के कारण समाज पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है जो निम्न है–

**1. प्रकार्यात्मक स्वतंत्रता एवं विशेषीकरण–**

श्रम विभाजन का एक प्रमुख परिणाम यह होता है कि इससे कार्यों के विभाजन के साथ–साथ कार्य करने की स्वतंत्रता और गतिशीलता में वृद्धि होती जाती है। इससे कार्यों के परिवर्तन के अवसर भी बढ़ जाते हैं अर्थात् श्रम विभाजन के परिणाम स्वरूप व्यक्ति एक ही प्रकार का कार्य करते हुए उस कार्य में विशेष विशेषज्ञ हो जाता है।

**2. सम्यता का विकास–**

दुर्खीम के अनुसार श्रम विभाजन के कारण सम्यता का भी विकास होता है अर्थात् जैसे–जैसे समाज में श्रम विभाजन का विकास होता है वैसे–वैसे सम्यता का विकास होता है। अतः श्रम विभाजन का परिणाम सम्यता का विकास भी है।

**3. सामाजिक प्रगति–**

श्रम विभाजन के कारण समाज में परिवर्तन होता है और यह परिवर्तन सामाजिक प्रगति को भी बढ़ाता है। परिवर्तन एक शाश्वत नियम है। समाज में श्रम विभाजन में भी परिवर्तन होता है उस कारण से सामाजिक प्रगति में भी परिवर्तन होता है।

**4. नवीन समूहों की उत्पत्ति और अन्तर्निर्भरता–**

दुर्खीम के अनुसार श्रम विभाजन का महत्वपूर्ण परिणाम यह भी है कि श्रम विभाजन के कारण न केवल समाज में नवीन समूहों का निर्माण होता है वरन् उनमें एक दूसरे पर निर्भरता भी बढ़ती है क्योंकि जो नवीन समूह समाज में निर्मित होते हैं वे एक विशेष प्रकार का ही कार्य करते हैं तथा उनकी अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति समाज के दूसरे समूह द्वारा की जाती है। इसीलिए समाज में विभिन्न समूहों में अन्तनिर्भरता भी बढ़ जाती है।

**5. व्यक्तिवादी विचारधारा–**

प्राचीन समाजों में श्रम विभाजन की मात्रा कम होती थी लेकिन सामूहिक चेतना अधिक माात्रा में होती थी जैसे समाज में श्रम विभाजन बढ़ता जाता है वैसे–वैसे सामूहिक चेतना में शिथिलता आती है जिसके कारण व्यक्तिवादी विचारधारा में वृद्धि होती है अर्थात् श्रम विभाजन के कारण व्यक्तिगत स्वतंत्रता व स्वार्थ में वृद्धि होती है। इस स्थिति में प्रदत्त प्रस्थिति के स्थान पर अर्जित प्रस्थिति का महत्व भी बढ़ जाता है।

6. प्रतिकारी कानून एवं नैतिक दबाव–

श्रम विभाजन समाज की कानून व्यवस्था को भी बदल देता है। यान्त्रिक एकता वाले समाजों में जहाँ समरूपता पायी जाती है, दमनकारी कानून पाये जाते हैं किन्तु सावयवी एकता वाले समाजों, जहाँ पर विभिन्नता के कारण श्रम विभाजन अधिक होता है जिसके परिणामस्वरूप विशेषीकरण के कारण समाज में जटिलता में वृद्धि होती है ऐसे समाजों में व्यक्तिगत हितों की रक्षा के लिए प्रतिकारी कानून बनाये जाते हैं। श्रम विभाजन जहाँ एक तरफ व्यक्तिवाद को प्रोत्साहन देता है वहीं दूसरी तरफ सामूहिक हितों से सम्बन्धित नैतिकता को भी विकसित करता है जो व्यक्तिगत चेतना, स्वार्थ और स्वतंत्रता पर नियन्त्रण रखती है।

7. सावयवी सामाजिक एकता–

श्रम विभाजन के कारण सावयवी एकता स्थापित होती है जिसमें विभिन्न अंगों में परस्पर प्रकार्यात्मक निर्भरता एवं सहयोग पाया जाता है हालांकि यह विभिन्न अंग भिन्न–भिन्न प्रकार के कार्यों को सम्पादित करते हुए भी एक दूसरे पर निर्भर रहते हैं।

दुर्खीम ने श्रम विभाजन की समाजशास्त्रीय व्याख्या प्रस्तुत करके सामाजिक अध्ययन को एक नई दिशा दी। श्रम विभाजन को आपने सामाजिक आधार पर समझाने का प्रयास किया। श्रम विभाजन को एक नैतिक आवश्यकता के रूप में प्रकट कर दुर्खीम ने इस बात पर बल दिया कि सामाजिक जीवन एक नैतिक आवश्यकता है। समाज का अस्तित्व नैतिकता पर निर्भर करता है। एकता समाज की आत्मा है जिसके अभाव में समाज निष्प्राण एवं निष्क्रिय हो जायेगा।

## मैक्स वेबर 1864–1920

### परिचय–

जर्मनी के महान् विचारक प्रसिद्ध राजनीतिक अर्थशास्त्री एवं समाजशास्त्री मैक्स वेबर का जन्म अप्रेल 1864 में जर्मनी के इरफूर्ट, धीगिया नामक स्थान पर एक सम्पन्न परिवार में हुआ था। इनके पिता पश्चिमी जर्मनी के एक वस्त्र व्यापारी परिवार से सम्बन्धित थे। साथ ही वे जर्मनी के नेशनल लिबरल पार्टी के प्रतिष्ठित सदस्य रहे। वेबर की स्कूली शिक्षा 1882 में समाप्त हो गयी। फिर उन्होंने हाइडेलबर्ग विश्वविद्यालय में कानून की पढ़ाई प्रारम्भ कर दी। सैनिक शिक्षा समाप्ति के बाद आप बर्लिन विश्वविद्यालय में अग्रिम शिक्षा के लिये आ गये। यहाँ 1886 में उन्होंने कानून की उपाधि प्राप्त की।

सन् 1893 में मैक्स वेबर का विवाह मेरियन रिनटजर के साथ हुआ। विवाह के पश्चात् अपने माता–पिता का घर छोड़कर अपना अलग घर बसाया। उन्होंने कुछ वर्ष तक बर्लिन विश्वविद्यालय में कानून के प्रध्यापक के रूप में कार्य किया। 1894 में वेबर को फेबर्ग विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र के प्रोफेसर के रूप में नियुक्ति मिली। 1897 में वेबर गम्भीर रूप से बीमार हो गये तथा चार वर्षों तक अस्वस्थ रहने के बाद 1901 में वेबर ने बौद्धिक दृष्टि से रचनात्मक काम पुनः प्रारम्भ किया। इन्होंने इटली, हालैण्ड, बेल्जियम तथा अमेरिका की यात्राएँ की। आप तीन महीने अमेरिका में रहने के दौरान वहाँ की सभ्यता व संस्कृति से बहुत प्रभावित हुए। इसी के प्रभाव के कारण इन्होंने प्रोटेस्टेण्ट इथिक्स तथा पूंजीवाद व नौकरशाही आदि विषयों पर गहन लेखन कार्य किया। 1918 में वियना विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र के प्रोफेसर बन गये वहीं 14 जून 1920 में इनका देहान्त हो गया।

### वेबर की प्रमुख कृतियाँ–

1. दी प्रोटेस्टेण्ट इथिक एण्ड दि स्प्रिट ऑफ कैपिटलिज्म 1904–05
2. धर्म का समाजशास्त्र 1922
3. दि हिन्दू सोशयल सिस्टम 1950
4. दि रिलिजन ऑफ चाइना 1951
5. दि एन्सिएण्ड जुडाइज्म 1952
6. दि थ्योरी ऑफ सोशल एण्ड एकानोमी आर्गेनाइजेशन 1927
7. ऐसेज इन सोशियोलोजी 1946
8. दि मैथोडोलॉजी ऑफ सोराल साइन्सेज 1946
9. दी सिटी 1913
10. जनरल इकोनॉमिक हिस्ट्री 1911
11. दि नेशनल एण्ड सोशल फाउण्डेशन ऑफ म्युजिक 1912

### वेबर का प्रमुख योगदान–

1. सामाजिक क्रिया का सिद्धान्त।
2. नौकरशाही।
3. आदर्श प्रारूप की अवधारणा।
4. सत्ता की अवधारणा।
5. सामाजिक वर्ग और प्रस्थिति।
6. पद्धतिशास्त्र।
7. धर्म का समाजशास्त्र।

### सामाजिक क्रिया–

मैक्स वेबर ने 'सामाजिक क्रिया' को समाजशास्त्र की विषयवस्तु मानते हुए उसे केन्द्रीय अध्ययन वस्तु माना है। वेबर ने सामाजिक क्रिया की वैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत की है। समाजशास्त्र की वैज्ञानिक प्रकृति को दर्शाने के लिए उन्होंने 'सामाजिक क्रिया सिद्धान्त' का सहारा लिया। उनका यह सिद्धान्त आदर्श प्रारूप का एक प्रकार है। इस सिद्धान्त को आपने अपनी पुस्तक 'सामाजिक और आर्थिक संगठन में प्रतिपादित किया।

वेबर के अनुसार सामाजिक क्रिया सिद्धान्त को समझने से पद्धति हमें 'क्रिया' और 'व्यवहार' को समझना होगा। सामाजिक सम्बन्धों के निर्माण के लिए हमें विभिन्न लोगों से अन्तःक्रिया करना पड़ता है। इन अन्तः क्रियाओं से ही सामाजिक सम्बन्धों का निर्माण होता है और सामाजिक सम्बन्धों से समाज की क्रिया के लिए चार आवश्यक तत्व है, वे हैं–

1. कर्त्ता
2. लक्ष्य
3. साधन
4. परिस्थिति

अर्थात् किसी भी क्रिया को करने के लिए एक से अधिक कर्त्ता होने चाहिए उन कर्त्ताओं का कोई लक्ष्य होना चाहिए। लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कर्त्ता के पास कोई साधन भी होने चाहिए तथा उपर्युक्त सभी के साथ सामाजिक परिस्थिति भी अनुकूल होनी चाहिए जिससे कर्त्ता लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए उचित साधनों का प्रयोग करते हुए किसी कार्य को सम्पन्न कर सके। समाजशास्त्रीय दृष्टि से सभी प्रकार की क्रियाएँ सामाजिक क्रियाएं नहीं होती हैं वरन् केवल वे क्रियाएँ ही जो अर्थपूर्ण होती है और जिनका सम्बन्ध व्यक्ति के भूतकाल, वर्तमान या भविष्य के व्यवहार से होता है, सामाजिक क्रियाएँ कहलाती है।

सामाजिक क्रिया को परिभाषित करते हुए वेबर लिखते हैं कि ''किसी क्रिया को सामाजिक क्रिया तभी कहा जा सकता है जबकि इस क्रिया को करने वाले व्यक्ति या व्यक्तियों के कारण यह क्रिया दूसरे व्यक्तियों के व्यवहार द्वारा प्रभावित हो और उसी के अनुसार उसकी गतिविधि निर्धारित हो।'' इस परिभाषा से स्पष्ट है कि किसी भी क्रिया के सामाजिक क्रिया कहलाने के लिए आवश्यकता है कि हम उसमें व्यक्तियों के वैयक्तिक दृष्टिकोण को समझे। अर्थात् व्यक्ति या कर्ता उस व्यवहार का क्या अर्थ लगाता है। वेबर के अनुसार कोई भी व्यवहार या गतिविधि अपने आप में कुछ भी नहीं है, किन्तु यदि व्यवहार या क्रिया को करने में कर्ता किसी अर्थ को जोड़ता है तो वह क्रिया सामाजिक क्रिया बन जाती है। इसे हम इस गणितीय सूत्र के द्वारा भी समझ सकते हैं।

सामाजिक क्रिया = व्यवहार (गतिविधि) + कर्त्ता द्वारा दिया अर्थ

वेबर ने सामाजिक क्रिया को समझने के लिए उसके निर्वचन पर बल दिया है। इसीलिए उनके समाजशास्त्र को निर्वचनात्मक समाजशास्त्र कहा जाता है।

### विशेषताएँ–

वेबर ने सामाजिक क्रिया की निम्न चार विशेषताएँ बतलाई है।

1. सामाजिक क्रिया दूसरे व्यक्तियों के भूतकाल, वर्तमान या भावी व्यवहार द्वारा प्रभावित होती है।
   सामाजिक क्रिया किसी न किसी सामाजिक व्यवहार से प्रभावित होती है। चाहे वह व्यवहार भूतकाल, वर्तमान या भावी किसी भी काल में किया गया हो। उदाहरणार्थ यदि कोई व्यक्ति भूतकाल में उसे दी गयी गाली का बदला लेने के लिए अपने दुश्मन के साथ मारपीट करता है तो उसकी यह क्रिया सामाजिक क्रिया कहलाएगी।
2. प्रत्येक प्रकार की क्रिया सामाजिक क्रिया नहीं है।
   समाज में घटित होने वाली सभी क्रियाएँ सामाजिक क्रिया नहीं होती है क्योंकि सामाजिक क्रिया की श्रेणी में वही क्रिया आएगी जिसमें एक से अधिक कर्ता एक दूसरे को अपने कार्य द्वारा प्रभावित करे। उदाहरणार्थ कोई व्यक्ति एकान्त में रहकर कार्य करता है तो उससे कोई और व्यक्ति प्रभावित नहीं होता है तो ऐसी क्रिया सामाजिक क्रिया की श्रेणी में नहीं आती है।
3. मनुष्य का प्रत्येक प्रकार का सम्पर्क सामाजिक सम्पर्क नहीं है।
   जब तक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से सम्पर्क में आने के बाद उसे प्रभावित करे तो वह सामाजिक क्रिया की श्रेणी में आएगा अन्यथा नहीं। उदाहरणार्थ यदि दो व्यक्ति आपस में टकरा कर बिना कुछ बोले और करे अपने कार्य में व्यस्त हो जाते हैं तो यह सामाजिक क्रिया नहीं कहलाएगी। यह सामाजिक क्रिया तभी कहलाएगी जब उनके बीच वाद–विवाद, बहस या मारपीट हो, क्योंकि तभी वे एक दूसरे को अपने व्यवहार से प्रभावित करते हैं।

सामाजिक क्रिया न तो अनेक व्यक्तियों द्वारा की जाने वाली एक सी क्रिया है और न ही उस क्रिया को कहते हैं जो कि केवल दूसरे व्यक्तियों द्वारा प्रभावित है।

दूसरे व्यक्तियों द्वारा एवं दूसरे व्यक्तियों के व्यवहारों द्वारा प्रभावित क्रिया में अन्तर है। जैसे कुछ व्यक्ति सड़क पर चल रहे हैं और अचानक वर्षा आ जाए और सभी अपना छाता निकाल ले तो यह सामाजिक क्रिया नहीं है क्योंकि क्रिया दूसरे व्यक्तियों से प्रभावित होकर नहीं वरन् वर्षा के कारण है। इसके ठीक विपरीत यदि किसी व्यक्ति के इशारे पर कुछ व्यक्ति नृत्य करते हैं तो उसे सामाजिक क्रिया कहेंगे क्योंकि यह किसी के कहने या इशारे करने पर की गई है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सामाजिक क्रिया समाजशास्त्र के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन करती है। सामाजिक क्रिया के अध्ययन से हम यह ज्ञात कर सकते हैं कि व्यक्ति कोई भी क्रिया किन कारणों से कर रहा है और उसका समाज पर क्या प्रभाव पड़ रहा है। अर्थात् क्रियाओं के बीच कार्य कारण प्रभाव सम्बन्धों को ज्ञात किया जाता है।

### सामाजिक क्रिया के प्रकार–

वेबर ने सामाजिक क्रिया के निष्पादन के आधार पर चार प्रकार की क्रियाओं का उल्लेख किया है–

**1. तार्किक क्रिया**—वेबर के अनुसार इस प्रकार की क्रिया में तर्क तथा विशिष्ट उद्देश्य को महत्वपूर्ण माना जाता है। इस प्रकार की क्रियाओं को करते समय व्यक्ति अपने लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए तर्क के आधार पर क्रिया करता है। इसीलिए वेबर इस प्रकार की क्रिया को 'लक्ष्य के प्रति अभिस्थापित' कहते हैं। उदाहरण के लिए जब कोई इन्जीनियर किसी नदी पर पुल बनाता है तो वह तर्क के आधार पर निश्चित करता है कि पुल किस स्थान पर बनाया जाए ताकि उस पुल से अधिक से अधिक लाभ मिल सके तो ऐसी क्रिया तार्किक क्रिया की श्रेणी में आती है।

**2. मूल्यात्मक क्रिया**—जब व्यक्ति समाज के मूल्यों से प्रभावित होकर क्रिया करता है तो ऐसी क्रिया को मूल्यात्मक क्रिया कहते हैं। वेबर इसे मूल्य के प्रति अभिस्थापित कहते हैं। इस प्रकार की क्रिया के पीछे तर्क का होना आवश्यक नहीं है वरन् नैतिकता व धर्म प्रतिमानों द्वारा निर्देशित होती है। उदाहरणार्थ जब कोई समुद्री जहाज डूब रहा होता है तो उस जहाज के कप्तान की नैतिकता होती है कि वह पहले जहाज में यात्रा करने वालों तथा उसके अधीनस्थ को बचाएगा। उसके उपरान्त स्वयं को। ऐसा करते समय वह मर जाना अच्छा समझता है न कि पहले खुद को बचाना। वह ऐसा इसीलिए करता है क्योंकि समाज के मूल्यों से वह बँधा हुआ है। अतः ऐसी क्रिया को मूल्यात्मक क्रिया कहा जाता है।

**3. भावनात्मक क्रिया**—इस प्रकार की क्रिया का सम्बन्ध व्यक्ति के भावनाओं से होता है। अर्थात् प्रेम, दया, घृणा, सहानुभूति तथा क्रोध आदि में आकर व्यक्ति कोई क्रिया करता है तो उसे भावनात्मक क्रिया कहा जाता है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति का अपने से नियन्त्रण समाप्त हो जाता है तथा भावनाओं के अन्तर्गत वह ऐसी क्रिया करता है। उदाहरण के लिए व्यक्ति क्रोध में आकर किसी की हत्या कर दे तो ऐसी क्रिया भावनात्मक क्रिया की श्रेणी में आएगी।

**4. परम्परात्मक क्रिया**—इस प्रकार की क्रिया का सम्बन्ध प्राचीन काल से चली आ रही प्रथाओं, परम्पराओं आदि से होता है। अर्थात् जो सामाजिक क्रिया प्रचलित प्रथाओं, परम्पराओं आदि के प्रभाव से निर्देशित होती है तो उसे परम्परात्मक क्रिया कहा जाता है। उदाहरण के लिए मृत्युभोज जाति में विवाह आदि क्रिया को परम्परात्मक क्रिया कहते हैं।

सामाजिक क्रिया के उपर्युक्त वर्गीकरण से स्पष्ट है कि वेबर ने यह स्थापित करने का प्रयास किया कि व्यक्ति कोई भी कार्य करता है वह तर्क, मूल्य, भावों तथा परम्पराओं के वशीभूत होकर ही करता है। वेबर के अनुसार पश्चिमी देशों में तार्किक एवं पूर्व देशों में मूल्यात्मक, भावनात्मक व परम्परात्मक क्रियाएं होती है।

## महत्वपूर्ण बिन्दु

- समाजशास्त्र की स्थापना 1838 में अगस्ट कॉम्ट ने की थी।
- यूरोप में बौद्धिक एवं औद्योगिक क्रान्ति के कारण ही सामाजिक विज्ञानों का विकास हुआ।
- कॉम्ट ने मानव चिन्तन की तीन अवस्थाओं धार्मिक, तात्त्विक एवं प्रत्यक्षवादी अथवा वैज्ञानिक बतायी है।
- प्रत्यक्षवाद ''क्या है'' का अध्ययन है।
- कॉम्ट के अनुसार समाजशास्त्र का विज्ञान बनना है तो उसे अवलोकन परीक्षण, तुलनात्मक तथा ऐतिहासिक पद्धति का प्रयोग हो।
- कार्ल मार्क्स को संघर्षवादी एवं साम्यवादी विचारधारा का जनक माना जाता है।
- मार्क्स ने वर्ग निर्धारण का आधार उत्पादन के साधनों का स्वामित्व माना है।
- वर्ग संघर्ष तभी होगा जब वर्ग में वर्ग के लिए चेतना उत्पन्न होगी।
- मार्क्स के अनुसार समाज के इतिहास में हर समय में दो वर्ग रहे हैं।
- मार्क्स का मानना था कि पूंजीवादी के बाद आधुनिक साम्यवाद स्थापित होगा जो राज्य व वर्गविहीन होगा।
- इमाईल दुर्खीम को अगस्ट कॉम्ट का उत्तराधिकारी माना जाता है।
- दुर्खीम पहले समाजशास्त्री थे जिन्होंने श्रम विभाजन को सामाजिक आधार पर समझाया।
- दुर्खीम श्रम विभाजन का प्रमुख कारण जनसंख्या एवं उसका घनत्व मानते हैं।
- दुर्खीम ने दो प्रकार की एकता की चर्चा की यान्त्रिक एकता तथा सावयवी एकता।
- यान्त्रिक एकता वाले समाज में दमनकारी तथा सावयवी एकता वाले समाज में प्रतिकारी कानून पाया जाता है।
- मैक्स वेबर जर्मनी के रहने वाले थे।
- वेबर ने सामाजिक क्रिया को समाजशास्त्र की विषयवस्तु माना।
- वेबर के अनुसार सामाजिक क्रिया के लिए कर्त्ता, लक्ष्य, साधन तथा परिस्थिति का होना आवश्यक है।
- वेबर ने समाज में पायी जाने वाली चार प्रकार की तार्किक, मूल्यात्मक, भावनात्मक तथा परम्परागत सामाजिक क्रियाओं को बताया।
- वेबर के अनुसार सामाजिक सम्बन्धों के निर्माण के लिए सामाजिक क्रिया का होना आवश्यक है।

## अभ्यासार्थ प्रश्न

### बहुचयनात्मक प्रश्न

1. अगस्त कॉम्ट ने समाजशास्त्र की स्थापना कब की ?
   (अ) 1830 (ब) 1838
   (स) 1842 (द) 1848
2. कॉम्ट के अनुसार चिन्तन की प्राथमिक अवस्था क्या है?
   (अ) प्रत्यक्षवादी (ब) तात्त्विक
   (स) धार्मिक (द) उपर्युक्त सभी
3. प्रत्यक्षवादी क्या है?
   (अ) समाज की धार्मिक स्थिति
   (ब) समाज की तात्त्विक स्थिति
   (स) समाज की परम्परागत स्थिति
   (द) समाज की वैज्ञानिक स्थिति
4. वेबर के अनुसार निम्न में से कौनसा कारण प्रत्यक्षवाद के अनुकूल है?
   (अ) प्रेतवाद (ब) बहुदेववाद
   (स) एकेश्वरवाद (द) अवलोकन
5. मार्क्स ने कौनसे सन् में डाक्ट्रेट की उपाधि प्राप्त की?
   (अ) 1840 (ब) 1841
   (स) 1842 (द) 1843
6. मार्क्स निम्न में से कौनसी विचारधारा के जनक माने जाते हैं?
   (अ) प्रजातांत्रिक (ब) राजतांत्रिक
   (स) समाजवादी (द) साम्यवादी
7. मार्क्स के अनुसार जिन लोगों के पास उत्पादन के साधनों का स्वामित्व नहीं होता है उसे क्या कहेंगे?
   (अ) पूंजीपति (ब) श्रमिक
   (स) राजा (द) जमींदार
8. ''दास कैपिटल'' पुस्तक के रचियता है–
   (अ) हींगल (ब) मार्क्स
   (स) वेबर (द) दुर्खीम
9. दुर्खीम ने किस पुस्तक पर डाक्ट्रेट की उपाधि प्राप्त की ?
   (अ) समाज में श्रम विभाजन
   (ब) आत्महत्या
   (स) नैतिक शिक्षा
   (द) समाजवाद
10. दुर्खीम ने श्रम विभाजन की व्याख्या किस आधार पर की ?
    (अ) आर्थिक (ब) सामाजिक
    (स) राजनीतिक (द) औद्योगिक
11. यान्त्रिक एकता है–
    (अ) समरूपता की एकता
    (ब) विभिन्नता की एकता
    (स) जटिलता की एकता
    (द) आधुनिक एकता
12. प्रकार्यात्मक स्वतंत्रता एवं विशेषीकरण किसका परिणाम है ?
    (अ) औद्योगिकरण (ब) पश्चिमीकरण
    (स) श्रम विभाजन (द) नगरीकरण
13. मैक्स वेबर किस देश के निवासी थे ?
    (अ) जर्मनी (ब) फ्रांस
    (स) अमेरिका (द) इंग्लैण्ड
14. वेबर के अनुसार सामाजिक क्रिया कर्ता के द्वारा किया गया वह व्यवहार है जो, है–
    (अ) अर्थपूर्ण (ब) उद्देश्यपूर्ण
    (स) लक्ष्यपूर्ण (द) साधनपूर्ण
15. निम्न में से कौनसी क्रिया भावनात्मक क्रिया कहलायेगी ?
    (अ) पुल निर्माण (ब) विवाह करना
    (स) चोरी करना (द) क्रोध में हत्या करना

### अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. अगस्त कॉम्ट का जन्म फ्रांस के किस नगर में हुआ था ?
2. समाजशास्त्र के जनक कौन थे ?
3. पॉजिटिव फिलोसफी का प्रकाशन कब हुआ ?
4. धार्मिक व तात्त्विक अवस्था में किसका अभाव होता है?
5. रेमण्ड ऍरा की पुस्तक का क्या नाम है ?
6. वर्ग संघर्ष क्या है ?
7. मार्क्स के अनुसार वर्ग संघर्ष कब होता है ?
8. मार्क्स ने कितने प्रकार के समाज बताये हैं?
9. दुर्खीम का जन्म कब और कहाँ हुआ था?
10. दुर्खीम ने किस विषय पर डाक्ट्रेट की उपाधि प्राप्त की?
11. सावयवी एकता क्या है?
12. दमनकारी कानून कैसे समाजों में पाये जाते हैं?
13. मैक्स वेबर का देहान्त कब हुआ था?
14. सामाजिक क्रिया का गणितीय सूत्र लिखिए?
15. मूल्यात्मक क्रिया क्या है?

### लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. अगस्त कॉम्ट के समाजशास्त्र के शाब्दिक अर्थ को समझाइये।
2. प्रेतवाद क्या है ?
3. अवलोकन को परिभाषित कीजिए।
4. प्रत्यक्षवाद क्या है ?

5. मार्क्स ने वर्ग को कैसे परिभाषित किया ?
6. वर्ग चेतना क्या है ?
7. पूंजीवाद समाज में कौनसे वर्ग है ?
8. अपने लिए वर्ग को समझाइये।
9. दुर्खीम ने समाज में श्रम विभाजन के कौन–कौनसे कारण बताये हैं?
10. यान्त्रिक एकता वाले समाज कौनसे समाज को इंगित करते हैं?
11. आधुनिक समाजों में कानून का क्या स्वरूप होता है ?
12. वेबर ने सामाजिक क्रिया को कैसे परिभाषित किया है?
13. सामाजिक क्रिया की कोई तीन विशेषताएँ बतलाइये।
14. तार्किक क्रिया को उदाहरण सहित समझाइये।
15. पूर्व देशों में वेबर के अनुसार कौनसी क्रियाएँ अधिक होती है ?

## निबन्धात्मक प्रश्न

1. अगस्त कॉम्ट द्वारा दी गई चिन्तन की अवस्थाओं को समझाइए।
2. कार्ल मार्क्स के वर्ग संघर्ष के सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।
3. इमाईल दुर्खीम की श्रम विभाजन की व्याख्या क्या है ? समझाइए।
4. मैक्स वेबर की सामाजिक क्रिया सिद्धान्त को समझाइए।

उत्तरमाला–1. (ब) 2. (स) 3. (द) 4. (द) 5. (द) 6. (द) 7. (द) 8. (द) 9. (अ) 10. (ब) 11. (अ) 12. (स) 13. (अ) 14. (अ) 15. (द)